National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2019; 1(23): 27-31
© 2019 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ.समणी संगीत प्रज्ञा
सहआचार्य, प्राकृत एवं संस्कृत विभाग,
जैन विश्वभारती संस्थान
(मान्य विश्वविद्यालय),
लाडनूँ-341306, राजस्थान

Correspondence:
डॉ.समणी संगीत प्रज्ञा
सहआचार्य, प्राकृत एवं संस्कृत विभाग,
जैन विश्वभारती संस्थान
(मान्य विश्वविद्यालय),
लाडनूँ-341306, राजस्थान

उत्तर एवं मध्य भारतीय प्राकृत अभिलेखों का वाक्य-तत्त्व

डॉ.समणी संगीत प्रज्ञा

सार- भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। प्राचीन काल से लेकर आज तक विश्व में जितनी भी भाषाएं प्रचलित रही हैं, उनके लिखने की शैली भले ही भिन्न रही है, किंतु अर्थ निस्पादन करने में सभी भाषाएं समर्थ रही हैं। हमारे देश भारत में भी इस समय बहुत सी भाषाएं प्रचलित हैं। सब का ध्वनि- तत्त्व, रूप-तत्त्व समान नहीं हैं, किंतु अर्थ बोध कराने में सभी भाषाएं समर्थ हैं। भाषा जब वाक्य की भूमिका में होती है, तब उसका स्वरूप वाक्यों के माध्यम से व्यवस्थित होता है। पद भी वाक्य में प्रयुक्त होकर अपना अभीष्ट अर्थ प्रकट करते हैं। वाक्य में पदों या शब्दों का स्थानिक महत्त्व भी होता है, इसलिए अर्थ बोधन में स्थान निर्धारण भी प्रमुख होता है।

कुंजी - वाक्य की परिभाषा एवं स्वरूप, वाक्य एवं पद का संबंध, वाक्य का विभाजन, वाक्यों के प्रकार, सरल वाक्य, संयुक्त वाक्य, मिश्र वाक्य, अर्थमूलक भेद, क्रियामूलक भेद, शैलीमूलक भेद।

पुरातात्त्विक साक्ष्यों में अभिलेख सबसे प्रामाणिक साक्ष्य है। अभिलेखं में लिखित वाक्यों से तात्कालिन ऐतिहासिक घटनाओं के साथ ही साथ साहित्यिक एवं भाषातात्त्विक विवरण भी प्राप्त होता है। जिसके आधार पर भाषा के विभिन्न रूपों का अध्ययन किया जाता है। इसमें ध्वनि-तत्त्व, रूप-तत्त्व, अर्थ-तत्त्व और वाक्य-तत्त्व के अध्ययन प्रमुख हैं। प्रस्तुत अध्ययन का विषय वाक्य-तत्त्व है। अन्य तत्त्वों का पूर्व में विवरण दिया जा चुका है। वाक्य-तत्त्व में वाक्यों की रचना, वाक्यों के भेद, वाक्यों में परिवर्तन, वाक्यों में पदक्रम और वाक्यों के विश्लेषण प्रमुख हैं। वाक्य-तत्त्व में भाषा में प्रयुक्त विभिन्न पदों का परस्पर संबंध का विचार किया जाता है। इसलिए वाक्य-तत्त्व में वाक्य का स्वरूप, वाक्य की परिभाषा, वाक्य की रचना, वाक्य के अनिवार्य तत्त्व, वाक्य में निकटस्थ अवयव, परिवर्तन की दिशाएं, परिवर्तन के कारण आदि क्रम बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं।

वाक्य में शब्द अपना अर्थ तभी देते हैं, जब उनका संयोजन ठीक से हो, पदविज्ञान व वाक्य विज्ञान भिन्न हैं। इनमें मुख्य अंतर यह है कि पदविज्ञान में पदों की रचना का विवेचन होता है। इसलिए उसमें कारक, विभक्ति, वचन, लिंग, काल, पुरूष आदि के बोधक शब्द किस प्रकार बनते हैं, इस पर विचार किया जाता है। वाक्य-तत्त्व में पदों का कहां व किस प्रकार प्रयोग हो, उनको वाक्य में संयोजन करने से अर्थ में क्या अंतर होता है आदि विषयों का विवेचन होता है। तात्त्विक दृष्टि से ध्वनि, पद और वाक्य में अंतर है। ध्वनि का संबंध उच्चारण से हैं। उच्चारण करने में शारीरिक व्यापार प्रमुख होता है। पद में ध्वनि और सार्थकता दोनों का होना आवश्यक है। पद में शारीरिक व मानसिक दोनों तत्त्वों के समन्वय से वह वाक्य में प्रयोग के योग्य बन जाता है।

विचार मन का कार्य है अतः पद में मानसिक व्यापार भी समाहित है। वाक्य में विचार, विचारों का समन्वय, सार्थक अभिव्यक्ति ये सभी संबंध हैं। इस प्रकार ध्वनि उच्चारण से संबंधित है। इसमें शारीरिक तत्त्व मुख्य है। पद में शारीरिक व मानसिक दोनों तत्त्व हैं। वाक्य मानसिक पक्ष की पूर्ण प्रधानता के कारण भाषा का अभिव्यक्त रूप है। प्रश्न उठता है कि वाक्य क्या है?

वाक्य की अनेक परिभाषाएं दी गई हैं, किंतु सबसे सार्थक परिभाषा यह हो सकती है कि भाषा की लघुतम पूर्ण सार्थक इकाई को वाक्य कहते हैं। वाक्य को प्रायः विद्वत् वर्ग में सार्थक शब्दों का समूह माना गया है, जो भाव को व्यक्त करने की दृष्टि से अपने आप में पूर्ण हो। कोशों तथा व्याकरणों में भी वाक्य की इसी प्रकार की परिभाषा मिलती है।यूरोप में इस दृष्टि से प्रथम प्रयास थैक्स (लगभग पहली सदी ई.पू.) का है। भारत में पतंजलि (150 ई.पू. के लगभग) का नाम लिया जा सकता है। ये दोनों ही आचार्य 'पूर्ण' अर्थ की प्रतीति कराने वाले शब्द समूह को वाक्य मानते हैं। समझाने की दृष्टि से इनके ठीक होने पर भी तत्त्वतः इन्हें ठीक नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः भाषा में या बोलने में वाक्य ही प्रधान है। वाक्य भाषा की इकाई है। व्याकरणवेताओं ने कृत्रिम रूप से वाक्य को तोड़कर शब्दों को अलग-अलग कर दिया है। हमारा सोचना, समझना, बोलना या किसी भाव को हृदयंगम करना सबकुछ 'वाक्य' में ही होता है। ऐसी स्थिति में 'वाक्य पदों या शब्दों का समूह है' कहने की अपेक्षा 'पद या शब्द वाक्यों के कृत्रिम खंड हैं' कहना अधिक समीचीन है।

वाक्य की परिभाषा एवं स्वरूप

वाक्य को परिभाषित करने के लिए हम **'तात्त्विक'** और **'व्यावहारिक'** दृष्टिकोण का उपयोग कर सकते हैं। इसे निम्न रूप में समझ सकते हैं।

तात्त्विक परिभाषाः- वाक्य की तात्त्विक परिभाषा अत्यधिक विवादास्पद विषय है। भारत के प्राचीन वैयाकरणों, नैयायिकों, मीमांसकों तथा साहित्यकारों का इस विषय में पर्याप्त मतभेद रहा है। प्राचीन वैयाकरण 'पतंजलि' अपने महाभाष्य में लिखते हैं-

'एकतिङ्वाक्यसंज्ञ। भावनीतिवाक्यम्। आख्यातं साव्ययकारक-विशेषणं वाक्यम्। सक्रियाविशेषणञ्च। आख्यातं सविशेषणम्'[1]

अर्थात्-'मात्र क्रियापद के प्रयोग को' या 'कारक, अव्यय, विशेषण, क्रियाविशेषण तथा क्रिया के एक साथ प्रयोग को' अथवा 'कभी-कभी क्रियापद रहित एकमात्र **'तर्पणम्'** या **'पिण्डीम्'** जैसे **संज्ञापद**[2] को वाक्य कहा जाता है, क्योंकि यह भी 'तर्पण करो' या 'ग्रास खाओ' जैसे पूर्ण अर्थ का द्योतक है।

वाक्य का स्वरूप-उपर्युक्त परिभाषाओं से वाक्य का स्वरूप भी स्पष्ट हो जाता है। वाक्य की सार्थकता इसमें है कि उससे किसी बोध को पूर्णता के साथ व्यक्त किया जाए, अतः वाक्य के स्वरूप-विश्लेषण में वाक्यार्थ पर भी विचार किया जाता है। वस्तुतः वाक्यार्थ वाक्य से व्यक्त होने वाला कोई स्वतंत्र तत्त्व ही नहीं, वाक्य का एक घटक या नियामक तत्त्व भी है। मात्र कुछ पदों का समूह ही वाक्य नहीं बन जाता, उनमें अर्थगत अन्विति लाने के लिए क्रियापद का योग आवश्यक हो जाता है और वाक्यार्थ की अन्विति या संगति के लिए योग्यता, आकांक्षा आदि का होना आवश्यक माना जाता है।

वाक्य और पद का संबंध –

वाक्य और पद के संबंध को लेकर भारतीय विचारधारा दो भागों में विभक्त नजर नहीं आती है। अर्थात् 'पद' की अपेक्षा 'वाक्य' प्रधान है या 'वाक्य' की अपेक्षा 'पद' प्रधान है, इस धारणा के कारण दो सिद्धांत प्रचलित हो गए। इसमें एक तरफ **'अभिहितान्वयवाद'** (पदवाद) है तो दूसरी तरफ **'अन्विताभिदानवाद'** (वाक्यवाद) है।

भारतीय वाङ्मय परंपरा में मीमांसा दर्शन में वाक्य पर गहन विचार किया गया है। मीमांसकों को वाक्यकार कहा जाता है। इनमें से **कुमारिल भट्ट का संबंध 'अभिहितान्वयवाद' से है और उनके शिष्य प्रभाकर मिश्र का संबंध 'अन्विताभिधानवाद' के साथ है।** 'अभिहितान्वयवाद' का तात्पर्य है-आकांक्षा (सुनने की इच्छा), योग्यता (वाक्य में प्रयुक्त शब्दों का परस्पर एक साथ प्रयुक्त होने की योग्यता) और सन्निधि (एक शब्द का उच्चारण करने के बाद दूसरे शब्द का तुरंत उच्चारण होना-अर्थात् शब्दों के उच्चारण में काल का लंबा अंतराल न होना) के वशीभूत होकर वाक्य में प्रयुक्त सभी पदार्थों का परस्पर संबंध होने पर जिस अर्थ का बोध होता है वह अर्थ किसी एक शब्द का नहीं होता बल्कि सभी शब्दों का मिला-जुला अर्थ होता है जिसे वाक्यार्थ कहा जाता है। इनके अनुसार 'पद' की ही सार्थक सत्ता है, और वाक्य पदों का जोड़ा हुआ रूप है।

इस सिद्धांत में वाक्य-बोध की प्रक्रिया इस प्रकार होती है- सर्वप्रथम संकेतग्रह से शब्दों का ज्ञान, तत्पश्चात् व्यवहार में उन शब्दों का प्रयोग होने पर 'अभिधा' शक्ति से उनका बोध, फिर वाक्य में उन शब्दों का परस्पर समन्वय (संबंध) होकर फिर वाक्यार्थ बोध होता है। इसे 'पदवाद' कहा गया है।

आकाङ्क्षा - योग्यता - सन्निधिवशाद् वक्ष्यमाणस्वरूपाणां पदार्थानां समन्वये तात्पर्यार्थों विशेषवपुरपदार्थोऽपि वाक्यार्थः समुल्लसतीति अभिहितान्वय - वादिनां मतम्।[3]

भर्तृहरि ने भी अपने 'वाक्यपदीय' (ब्रह्मकाण्ड 73) में वाक्य की सत्ता को ही वास्तविक कहा है। इसी प्रकार पाश्चात्य भाषाशास्त्रियों में 'चाॅम्सकी' ने भी 'वाक्यवाद' का ही समर्थन किया है। स्पष्ट है कि अन्विताभिधानवाद या भृर्तहरि का मत ही आज के भाषा-विज्ञान जगत को मान्य है, और वाक्य ही भाषा की न्यूनतम पूर्ण सार्थक इकाई है, यह सिद्ध हो जाता है। वाक्य में आकांक्षा, योग्यता, सन्निधि का होना आवश्यक है। तभी कोई वाक्य अपना अर्थ देता है। **वाक्यं स्याद् योग्यताकांक्षासतियुक्तः पदोच्चयः।**

अभिलेखों में इस बात का पूर्ण रूप से ध्यान रखा गया है कि वाक्य अपना सार्थक अर्थ दें। अशोक के अभिलेखों में उसके आदेश या प्रजाहितकारी कार्यों का वर्णन है। साथ ही साथ राजा और प्रजा के आचार विचार से संबंधित उपदेशों का वर्णन है । कलिंग युद्ध के बाद अशोक के आचार-विचार में परिवर्तन आया। धर्माचरण से संबंधित अनेक आदेश उसके अभिलेखों में प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार मथुरा से प्राप्त अभिलेखों में कर्तव्यों का स्पष्ट निर्देश है। उन अभिलेखों में वाक्य एवं पदक्रम का प्रयोजन बड़े ही वैज्ञानिक ढंग से किया गया है। प्राकृत भाषा चूंकि उस समय जनभाषा थी, इसलिए प्राकृत भाषा में शिलालेख उत्कीर्ण कराये गये हैं। प्राकृत और संस्कृत भाषा का यह वैशिष्ट्य है कि उनमें पद के परिवर्तन से वाक्य के अर्थ में कोई अंतर नहीं आता। प्राकृत एवं संस्कृत भाषा के शब्दों में विभक्तियां लगी रहती है तभी वे पद बनते हैं। प्रत्येक विभक्तियों का अन्वय करके अर्थ को बैठा लिया जाता है। बहुत सी भाषाएं अपरिवर्तनीय पदक्रम वाली हैं। जिनमें यदि पदक्रमीय

परिवर्तन कर दिया जाए तो अर्थ बदल जाता है। चीनी भाषा इसी प्रकार की भाषा है। प्राकृत भाषा का वैशिष्ट्य यह है कि वाक्य संयोजन के समय विभक्ति युक्त पदों का प्रयोग होता है।परिवर्तन के बाद भी इसके अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं आता है।

अभिलेखीय/शिलालेखीय साहित्य में वाक्यार्थ निर्धारण में भी कठिनाई होती है। इसका कारण यह है कि कुछ अभिलेख एवं शिलालेख खंडित अवस्था में हैं तथा कालक्रम के प्रभाव से वर्ण भी नष्ट हो गये हैं। इसलिए वाक्यार्थ निर्धारण में कठिनाई होती है। कभी-कभी एक ही वाक्य के अनेक विद्वानों द्वारा अनेक अर्थ किये जाते हैं। किस वाक्य का किस अर्थ के साथ संगति बैठे, यह भी निर्धारण करना कठिन होता है। वाक्यार्थ निर्धारण के लिए संयोग, विप्रयोग, साहचर्य, विरोधित अर्थ, प्रकरण, लिंग, शब्द की सन्निधि, सामर्थ्य, औचित्य, देश, काल, व्यक्ति आदि कारक होते है।

इन कारणों के आधार पर यदि वाक्यार्थ का निर्धारण किया जाये तो अर्थ करना कुछ सरल हो सकता है। कहीं-कहीं अभिलेखों में अनेकार्थी शब्दों का प्रयोग किया गया है। ऐसे शब्दों के अर्थ निर्धारण में और अर्थ संगति में विद्वानों में मतभेद होना स्वाभाविक है।

जैसे अशोक के अभिलेख में- **'य इमाय कालाय जंबुद्वीपसि अमिसा देवा हुसु ते दानि मिसा कटा'।**[4] इसका अर्थ है-जम्बूद्वीप में जो देवता अमिश्र थे वे इस समय मिश्र किये गये। किंतु इस वाक्य में अमिसा शब्द का विद्वानों ने अनेक प्रकार से अर्थ किया है। यथा सिलवां लेवी ने 'देव' शब्द का अर्थ राजा किया है, परंतु अशोक के किसी भी अन्य अभिलेख में 'देव' शब्द राजा के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है, किंतु इस वाक्य का तात्पर्य यह है कि अशोक ने अपने धर्माचरण से जम्बूद्वीप (भारत) को ऐसा पवित्र बना दिया कि यह देवलोक सदृश हो गया और देव तथा मानव का अंतर मिट गया।

वाक्य का विभाजन

जितनी भी भाषाएं विश्व में प्रचलित हैं, सबकी रचना पद्धति अलग-अलग है। भाषा में कर्ता, कर्म, क्रिया, विशेषण आदि का स्थान निश्चित नहीं है। यहां पर अन्य भाषाओं के बारे में विमर्श न करके हिन्दी, संस्कृत और प्राकृत के विषय में ही विचार किया जा रहा है। हिन्दी भाषा में विभक्तियां शब्द से पृथक् रहती हैं। संस्कृत व प्राकृत भाषा में विभक्तियां शब्दों से संयुक्त रहती हैं। हिन्दी भाषा में पहले कर्ता को रखा जाता है फिर कर्म को और अन्य कारकों को और अंत में क्रिया को रखा जाता है।

हिन्दी भाषा में यदि क्रम विच्छेद कर दिया जाए तो अर्थ असंगत हो जाता है, किंतु संस्कृत एवं प्राकृत में ऐसी बात नहीं हैं। संस्कृत एवं प्राकृत के वाक्य में पदों को जहां भी रख दिया जाए उनके अर्थ में परिवर्तन नहीं आता है।

संस्कृत का उदाहरण-**बालकः पुस्तकं पठति** इस वाक्य का हिन्दी अर्थ बालक पुस्तक पढ़ता है। इस वाक्य में कर्ता, कर्म एवं क्रिया के संयोजन से वाक्य बनाया गया है। यदि वाक्य में पदों का क्रम परिवर्तित किया जाए अर्थात् **पठति पुस्तकं बालकः** तो भी अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं आता इसी प्रकार अभिलेखीय प्राकृत भाषा में भी- **देवानंपिये पियदसि लाज हेवं आहा सडुवीसतिवसअभिसितेन में इमानि पि जातानि कटानि से यथा।**[5] प्राकृत के इस वाक्य का अर्थ है-देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने कहा -राज्यारोहण के 26 वर्ष पश्चात् मेरे द्वारा इन्हें भी अवध्य कर दिया गया इस वाक्य में यदि क्रम परिवर्तन कर भी दिया जाए तो भी अर्थ की संगति में कोई कठिनाई नहीं होगी। आहा हेवं देवानंपिये पियदसि लाजा कर दिया जाए तो भी अर्थ की संगति सुचारू रूप से बैठती है। इस प्रकार संस्कृत एवं प्राकृत का अन्य भाषाओं से वैशिष्ट्य है।

वाक्यों के प्रकार

वाक्यों को रचना की दृष्टि से अनेक प्रकार से वर्गीकृत किया गया है। उनमें प्रमुख है- आकृतिमूलक भेद, रचनामूलक भेद, अर्थमूलक भेद, क्रियामूलक भेद एवं शैली मूलक भेद।

आकृतिमूलक भेद के अंतर्गत यदि विश्व की भाषाओं पर विचार किया जाए तो अनेक तत्त्व दृष्टिगत होते हैं। प्रकृति और प्रत्यय के आधार पर वाक्य भी चार प्रकार के मिलते हैं। अयोगात्मक वाक्य, श्लिष्ट योगात्मक, अश्लिष्ट योगात्मक वाक्य, और प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य।

श्लिष्ट योगात्मक वाक्य में प्रकृति व प्रत्यय मिले हुए रहते हैं। संस्कृत एवं प्राकृत भाषा में इसी प्रकार के वाक्य पाये जाते हैं। **मा अर्हतानं श्रमणश्राविकाये।**[6]

इस वाक्य के अर्हत् पद में षष्ठी बहुवचन का प्रयोग किया गया है।**श्रमणाश्राविकाये** में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग किया गया है। इन वाक्यों में प्रकृति एवं प्रत्यय को सरलता से अलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि प्राकृत भाषा में विभक्ति युक्त पदों का प्रयोग होता है। **भदंतजयसेनस्य आंतेवासिनीये।**[7]

इस वाक्य में भदंतजयसेन में षष्ठी एकवचन और आंतेवासिनीये में चतुर्थी एकवचन का प्रयोग हुआ है। यह श्लिष्ट योगात्मक वाक्य है।

इमे वियापटा हो हंति ति निगंठेसु पि मे कटे इमे वियापटा हो हंति ति पटिविसिठं पटीविसिठं तेसु तेसु ते.....माता (25) धंममहामाता चु मे एतेसु चेव वियापटा सवेसु च पांसडेसु (26) देवानंपिये पियदसि लाजा हेवं आहा (27)[8] इमे प्रथमा बहुवचन, वियापटा प्रथमा बहुवचन, ओहंति भू धातु लट्लकार प्रथम पुरूष बहुवचन, निगंठेसु सप्तमी बहुवचन, नानापासंडेसु सप्तमी बहुवचन, इनमें प्रकृति एवं प्रत्यय का प्रयोग साथ-साथ हुआ है। इसलिए यह श्लिष्ट योगात्मक वाक्य हैं।

रचनामूलक भेद

वाक्यों के सरंचना या गठन के आधार पर वाक्य के तीन भेद होते है। सामान्य या सरल वाक्य, संयुक्त वाक्य एवं मिश्र वाक्य।

यदि अशोक के अभिलेखों पर दृष्टिपात किया जाए तो यह बात समझ में आती है। उत्तर पश्चिम सीमा से प्राप्त अशोक के अभिलेख खरोष्ठी लिपि में लिखे गये है।

एक ही राजाज्ञा भिन्न-भिन्न अभिलेखों में भिन्न-भिन्न स्वरूप में दिखाई देती हैं। यह स्थानीयता का ही प्रभाव है।

वाक्य-तत्त्व से संबंधित अनेक विषय हैं, जिनका अन्वेषण शिलालेखों की भाषा के आधार पर किया जाना है। अभिलेखों मे लिखे हुए शब्द अपने अर्थ को देने में पूर्ण सक्षम हैं। यद्यपि काल के प्रभाववश या विदेशी आक्रमणकारियों के कारण बहुत से अभिलेख खंडित भी हो गये हैं। फिर भी विद्वानों ने उसका शब्द संयोजन करके उनका अर्थ निकालने का प्रयत्न किया है।

सरल वाक्य

सरल वाक्य मुख्य रूप से उन वाक्यों को कहा जाता है, जिसमें केवल एक उद्देश्य एवं विधेय होता है। गिरनार के प्रथम अभिलेख में अशोक ने सरल वाक्यों में राजाज्ञा को लिखवाया है। **‘एते पि त्री प्राणा पछा न आरभिसरे**‘ अर्थात् ये भी तीन प्राणी बाद में नहीं मारे जायेगें । इस वाक्य में **एते पि त्री प्राणा** उद्देश्य है। **पछा न आरभिसरे** विधेय है।

खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख में सरल वाक्यों के द्वारा अनेक स्थानों पर वृतान्तों का वर्णन किया गया है। यथा **‘कलिंगराजवस-पुरिसयुगे माहाराजाभिसेचनं पापुनाति’** इस वाक्य में कलिंगराजवसपुरुषयुगे उद्देश्य है। माहाराजाभिसेचनं कर्म है। पापुनाति विधेय है।

मथुरा से प्राप्त अभिलेख यद्यपि उसमें बहुत से अभिलेख खंडित अवस्था में हैं फिर भी जो अवशिष्ट हैं, उनमें सरल वाक्यों का बहुतायत प्रयोग हुआ है।

भंदतजयसेनस्य आंतेवासिनीये धामघोषाये दानो पासादो।[9] अर्थात् भदंत जयसेन की शिष्या धर्मघोषा के दानस्वरूप यह मंदिर हे। धर्मघोषा उद्देश्य है मंदिर विधेय है। अभिलेखों में कहीं-कहीं पर जो वाक्य संरचना की गई है, उसमें विधेय न देकर केवल उद्देश्य का ही वर्णन किया गया है । खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख में ऐसे उदाहरण प्राप्त होते हैं।

एरेन महाराजे माहामेघवाहनेन चेतिराजवसवधनेनपसथ - सुभले - खनेन चतुरंतलुठितगुनोपहिनेन कलिंगाधिपतिना सिरिखारवेलेन।[10]
इस वाक्य में केवल उद्देश्य ही है विधेय नहीं है।

संयुक्त वाक्य

संयुक्त वाक्य ऐसे वाक्यों को कहते हैं, जिसमें एक से अधिक वाक्यों का संयोजन होता है। अभिलेखों में इस प्रकार के वाक्यों का बहुतायत प्रयोग हुआ है।

खानापापितानि निसिहिया च कालापिता (स) आपानानि मे बहुकानि तत-तत कालापितानि पटीभोगाय पसुमुनिसानं (28) ल.....एस पटीभोगे नाम (20) विविधाया हि सुखापानाया पुलिमेहि पि लाजीहि ममया च सुखयिते लोके (21) इमं चु धमातु पटीपती अनुपटीपदंतु ति एतदथा मे।[11]

इस वाक्य में अनेक उपवाक्यों के संयोजन है। इसलिए यह संयुक्त वाक्य है।

मिश्र वाक्य

इसमें एक मुख्य वाक्य होता है और इसके आश्रित अनेक उपवाक्य होते हैं। **‘देवनं प्रियो मञति यथ किति सलवडि सिय सत्र प्रषंडनं (2) सलवडि तु बहुविध (3) तस तु इयो मूल यं वचगुति‘।**[12] यह वाक्य मिश्र वाक्य का उदाहरण है। इसमें एक मुख्य वाक्य है। और इसके अश्रित अनेक उपवाक्य है।

अर्थमूलक भेद-

अर्थ या भाव की दृष्टि से वाक्य के अनेक भेद होते हैं। यहां पर अभिलेखों से कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं जैसे-

प्रश्न वाक्य-कियं चु धम्मे अर्थात् धम्म क्या है? अशोक ने अपने अभिलेखों में स्वयं ही प्रश्न उपस्थित करके उनका उतार दिया है।

अनुज्ञा वाक्य- अधिकानि अठावियानि वसानि य हकं.....सके (ना तु खो बाढं प्रकंते हुसं एकं सवछरं सातिरेके तु खो संवछरे)[13] अर्थात् ‘ढाई वर्ष से अधिक व्यतीत हुए मैं उपासक था, परंतु अधिक पराक्रम मैंने नहीं किया एक वर्ष तक, किंतु एक वर्ष और कुछ अधिक बीते।

विधि वाक्य- एसा पकिति दीघावुसे पोरणा च एस हेवं एस कटिवियेे।[14]

अर्थात् यह पुरानी परंपरा है, जिससे दीर्घायुष प्राप्त होता है और इसका पालन होना चाहिए।

क्रिया मूलक भेद

प्राकृत भाषा में एक वाक्य में प्राय एक क्रिया होती है और वो विधेय रूप में होती है।

देवानं प्रियो पियदसि राजा एवं आह।[15]

अर्थात् देवताओं के प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा इस वाक्य में आह क्रिया है। और विधेय रूप में है। वाक्य के आधार पर क्रियायुक्त वाक्य तीन प्रकार के होते हैं-
कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य, एवं भाववाच्य।

कर्तृवाच्य में कर्ता की प्रधानता होती है। क्रिया कर्ता के आधार पर होती है।अभिलेखों में इसका बहुतायत प्रयोग मिलता है।

‘देवानांपियो पियदसि राजा सर्वत इच्छति सवे पासंडा वसेयु’, अर्थात् देवानां प्रिय प्रियदर्शी राजा सर्वत्र इच्छा करते है।[16]

आवाहवीवाहेसु वा पुत्रलाभेसु वा प्रवासंम्हि वा एतम्ही च अन्नम्हि च जनो उचावचं मंगलं करोते।[17] अर्थात् आवाह-विवाह पुत्र-लाभ अथवा प्रवास में उच्च और नीच (विविध प्रकार के) मंगलकार्य करते है। इसी प्रकार के अन्य अवसरों पर भी लोग ऊंच और नीच मंगलकार्य करते है।

कर्मवाच्य

कर्मवाच्य में कर्म की प्रधानता होती है। क्रिया का प्रयोग कर्म के आधार पर होता है। कर्ता में तृतीया का प्रयोग किया जाता है। इसमें कर्ता गौण होता है।

त्रयो दशे च वर्षे सुप्रवृत्त-विजय चके कुमारी पर्वतेऽहिते प्रक्षीया सेसृतिभ्यः कायिकानिषीद्यां यापज्ञापकेभ्यः राजभृतीश्रीर्णव्रताः शासिताः पूजायां रतोपासेन खारवेल श्रीमता जीवदेहश्रीकता परीक्षिता।[18]

भाववाच्य

भाववाच्य में क्रिया कर्ता से स्वतंत्र होती है। भाववाच्य का अर्थ क्रिया की प्रधानता वाला वाक्य। भाववाच्य में क्रिया प्रधान होती है।

दुवाडसवसाभिसितेन मे इयं आनपतिये।[19]

अर्थात् अभिषेक के बारहवें वर्ष मैंने यह आज्ञा दी है। अभिलेखों में णिजन्त क्रियाओं का भी बहुतायत प्रयोग हुआ है।

मगधानं च विपुलं भयं जनेतो हथी सुगंगीय पाययति मागधं च राजानं वहसतिमितं पादे वंदापयति नन्दराजनीतं च कालिंग-जिनं संनिवेसं गह रतनान पडहारेहि अंगमागधवसुं च नेयाति।[20]

इन वाक्यों में पाययति, वंदापयति, नेयाति क्रियाएं णिजन्त है।

देवानं प्रियो पियदसि राजा एवं आह द्वादश वासाभिसितेन मया इदं आञपितं।[21] अर्थात् देवानां प्रिय प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा।

अभिषेक के बारह वर्ष पश्चात् ऐसा आज्ञा मेरे द्वारा दी गई। इसमें आञपितं णिजन्त क्रिया है।

शैलीमूलक भेद

शैली का अर्थ होता है-कहने का ढंग। शैली के आधार पर अभिलेखों में सरल एवं सुबोध भाषा में लेख लिखे गये हैं। कृत्रिमता या अलंकारिता नहीं दिखाई देती। मुहावरेदार वाक्यों का भी प्रयोग नहीं दिया गया है। कम शब्दों में भी अधिक तथ्य प्रस्तुत करने का ध्यान दिया गया है। संतुलन और संगति का ध्यान रखा गया है। अशोक के अभिलेखों में सरल व सुबोध शैली में आदेश लिखाये गये हैं।

भो प्राणानं अविहीसा भूतानं ञातीनं सपंटिपती ब्रम्हण समणानं संपटिपति मातरि पितरि सुसुसा थैरसुसुसा एस अञे च बहुविधे धंमचरणे वडिते वडयिसति चेव देवानंप्रियो प्रियदर्शी राजा धंमचरणं आव सवटकपा धंमम्हि सीलम्हि तिस्टंतो धंमं अनुसासिसंति।

प्रवधयिसंति इदं धमंचरणं आव सवटकपा धमंम्हि सीलम्हि तिस्टंतो धेमं अनुसासिसंति।[22]

अर्थात् जीवधारियों के प्रति और अन्य प्राणियों के प्रति उचित व्यवहार, ब्रह्मणों व श्रमणों के प्रति उचित व्यवहार माता-पिता की सुश्रुषा व स्थविरों की सुश्रुषा बढ़ी है। इससे धर्माचरण की वृद्धि हुई। देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा इस धर्माचरण को और बढ़ायेगें।

देवानां प्रिय प्रियदर्शी राजा के पुत्र-पौत्र परपौत्र इस धर्माधारण को बढ़ायेंगें और कल्पान्त तक धर्म एवं शील का आचरण करते हुए धर्म का अनुशासन करेंगे।

सारांश - इस प्रकार अभिलेखों में वाक्य-तत्त्व की दृष्टि से सहजता सरलता और सुबोधता का पूर्ण ध्यान रखा गया है। अलंकारिता और मुहावरेदार भाषा का प्रयोग नहीं हुआ है। सीधी सादी भाषा में जनता तक अपनी बात पहुंचाने का प्रयास किया गया है। वह अभिलेखों में स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। यही कारण है कि वाक्य-तत्त्व के माध्यम से संपूर्ण तत्त्वों का समावेश अभिलेखीय साहित्य में किया गया है।

सन्दर्भ सूचीः

1. पातंजल महाभाष्यम्, 2/1/1
2. पातंजल महाभाष्यम्, 1/1/14
3. वाक्यं स्याद् योग्यताकांक्षासक्तियुक्तः पदोच्चयः-साहित्य दर्पण, 2/1, सं. शालिग्राम शास्त्री, पृ. 24
4. रूपनाथ अभिलेख पंक्ति, 2
5. देहली टोपरा. स्तम्भ अभिलेख. पंक्ति. 1-2
6. जैन शिलालेख संग्रह मथुरा लेख, 14 पृ. 17
7. जैन शिलालेख संग्रह मथुरा लेख 12 पृ. 16
8. अशोक के अभिलेख, सप्तम स्तम्भ अभिलेख पंक्ति-26
9. अशोक के अभिलेख पृ. 83 गिरनार शिलालेख, पंक्ति 12
10. हाथीगुम्फा अभिलेख, पंक्ति 3
11. जैन-शिलालेख-संग्रह पृष्ठ 26 मथुरा प्राकृत अभिलेख
12. हाथीगुम्फा अभिलेख पंक्ति-1
13. अशोक के अभिलेख सप्तम अभिलेख पृ. 148 पंक्ति 24
14. द्वादश अभिलेख, शहवाजगढ़ी पंक्ति-2
15. अशोक के अभिलेख, पंक्ति-2 ब्रह्मगिरि अभिलेख
16. अशोक के अभिलेख, ब्रह्मगिरि अभिलेख, पंक्ति- 12 पृ. 118
17. अशोक के अभिलेख तृतीय अभिलेख पृ. 4 प.1
18. अशोक के अभिलेख सप्तम अभिलेख, पृ. 11 प. 1
19. हाथीगुम्फा अभिलेख पंक्ति. 14
20. हाथीगुम्फा अभिलेख, पंक्ति-11
21. अशोक के अभिलेख तृतीय अभिलेख, पृ. 4 पंक्ति.1
22. अशोक के अभिलेख, पृ. 5 पंक्ति 6,7,8,9